अष्टम प्रकाश

अध्यात्म-रहस्य

अपर नाम

योगोद्दीपन-शास्त्र

सानुवाद-हिन्दी-व्याख्यासे मंडित

व्याख्याकार

जुगलकिशोर मुख्तार, युगवीर

संस्थापक 'वीरसेवामन्दिर'

सरसावा जिला सहारनपुर

प्रकाशक

वीर-सेवा-मन्दिर

२१ दरियागंज, दिल्ली

प्रथमावृत्ति १००० प्रति | मंगसिर, वीर सं० २४८४ वि० सं० २०१४ नवम्बर, १९५७ | मूल्य एक रुपया

प्रकाशकीय

आज 'अध्यात्म-रहस्य' नामक एक ऐसे दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थरत्नको अनुवादादिके साथ पाठकोंके हाथोंमें देते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है जो चिर-प्रतीक्षित था, जिसका बहुतसे शास्त्र भण्डारोंकी खोज हो जाने पर भी कहींसे कोई पता नहीं चल रहा था, और जिसको निर्मित हुए आज ७१४ वर्षसे भी ऊपरका समय हो चुका है। समाजके लिये यह एक बड़े ही सौभाग्यकी बात है जो अजमेर बड़ा धड़ा पंचायती जैन मन्दिरके भट्टारकीय शास्त्रभण्डारकी छान-बीन करते समय मुख्तारश्री जुगल-किशोरजीको दो वर्ष हुए यह अतीव उपयोगी ग्रन्थ एक जीर्ण-गुटकेसे उपलब्ध हुआ है। इसने मुख्तारश्रीको अपनी ओर इतना आकर्षित किया कि उनके हृदयमें इसके अनुवादादिका भाव जागृत हो उठा और उनकी सहज प्रेरणा पर प्रकाशनके लिये कुछ सज्जनोंका आर्थिक सहयोग भी प्राप्त हो गया। ग्रन्थकी व्याख्या तथा प्रस्तावनाके प्रस्तुत करनेमें जो स्तुत्य-श्रम हुआ है आशा है उससे पाठकजन यथेष्ट लाभ उठानेमें प्रवृत्त होंगे और यह ग्रन्थ लोकमें अध्यात्म-योग-विषयक रुचिको प्रोत्तेजन देनेमें समर्थ होगा।

जयन्तीप्रसाद जैन, प्रभाकर

समर्पण

स्व-पर-भेद-विज्ञानमें अनुरक्त,
हिंसादिक पापोंसे विरक्त,
इन्द्रिय-विषयोंमें अनासक्त,
राग-द्वेषादि-शत्रुओंके
उन्मूलनमें उद्युक्त,
सदाचारकी भावनाओंसे ओत-प्रोत
एवं
आत्म-विकासमें सदा दत्त-चित्त,
माननीय मुमुक्षु-जनोंको
सादर समर्पित

धन्यवाद

इस 'अध्यात्म-रहस्य' शास्त्रके प्रकाशनमें निम्न सज्जनों-ने बड़ी खुशीसे अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया है और उसके द्वारा एक लुप्तप्राय महत्वपूर्ण ग्रन्थके शीघ्र उद्धारमें वीरसेवामन्दिरका हाथ बटाया है। इस उदारता और श्रुतसेवाके लिये ये सभी सज्जन धन्यवादके पात्र हैं। संस्थाकी ओरसे ग्रंथकी २०० प्रतियाँ दातार महानुभावों-को यथेच्छ वितरणके लिये भेंट की गई हैं और १०० प्रतियाँ अन्य अध्यात्मप्रेमी सज्जनों तथा मुमुक्षुजनोंको भेंट की जाएँगी :—

२५१) ला० मक्खनलालजी ठेकेदार, ७ दरियागंज, दिल्ली।
१०१) बा० लालचन्दजी जैन, एडवोकेट, रोहतक।
१०१) बा० रघुवरदयालजी जैन एम.ए., करौलबाग, दिल्ली

— प्रकाशक

सन्मति प्रेस, २३० गली कुन्जस, दरीबा कलां, देहली।

प्रस्तावना

ग्रन्थकी उपलब्धि और परिचय

अध्यात्मके रहस्यको लिए हुए योग-विषयक यह ग्रन्थ विद्वद्वर पंडित आशाधरजीकी कृति है। यह ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं था *। इसकी मात्र सूचना ही अनगार-धर्मामृतकी टीका-प्रशस्तिके निम्न वाक्य-द्वारा मिलती थी :—

आदेशात् पितुरध्यात्म-रहस्य नाम यो व्यधात्।
शास्त्रं प्रसन्न-गम्भीरं प्रियमारब्धयोगिनाम् ॥

इस वाक्यमें बतलाया है कि 'अध्यात्म-रहस्य' नामका यह शास्त्र पिताके आदेशसे रचा गया है। साथ ही यह भी प्रकट किया है कि 'यह शास्त्र प्रसन्न, गम्भीर तथा आरब्ध-योगियोंके लिये प्रिय वस्तु है।' योग-विषयसे सम्बन्ध रखनेके कारण इसका दूसरा नाम 'योगोद्दीपन' भी है, जिसका उल्लेख हालमें खोजी गई ग्रन्थ-प्रतिके अन्तमें निम्न प्रकारसे पाया जाता है:—

---

* पं० नाथूरामजी प्रेमीने अक्तूबर १९५६ में प्रकाशित 'जैन साहित्य और इतिहास' में भी इस ग्रन्थको 'अप्राप्य' लिखा है।

इत्याशाधर-विरचित-धर्मामृतनाम्नि सूक्ति-संग्रहे योगोद्दीपनयो नामाष्टादशोऽध्यायः ।

ग्रन्थके इस समाप्ति-सूचक पुष्पिका-वाक्यसे यह भी मालूम होता है कि पं० आशाधरजीने इसे प्रथमतः अपने धर्मामृतग्रन्थके अठारहवें अध्यायके रूपमें लिखा है। धर्मामृतमें अनगार-धर्मामृतके नौ और सागारधर्मामृतके आठ अध्याय हैं। सागारधर्मामृतके अन्तिम अध्यायमें उसे क्रमशः सत्रहवाँ अध्याय प्रकट किया है। यह १८ वाँ अध्याय, जो उसके पश्चात् होना चाहिये था, अभी तक धर्मामृतके किसी भी संस्करणके साथ प्रकाशित नहीं हुआ और न उसकी किसी लिखित ग्रन्थ-प्रतिके साथ जुड़ा ही मिला है। जान पड़ता है आशाधरजीने इसे सागारधर्मामृतकी टीकाके भी बाद बनाया है, जो कि विक्रम संवत् १२९६ पौषकृष्ण सप्तमीको बनकर समाप्त हुई है; क्योंकि उस टीकाकी प्रशस्तिमें इस ग्रन्थका कोई नामोल्लेख तक न होकर बादको कार्तिक सुदि पंचमी सं० १३०० में बनकर पूर्ण हुई अनगार-धर्मामृतकी टीकामें इसका उक्त उल्लेख पाया जाता है। और इससे यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रंथकी रचना उक्त दोनों टीका-समयोंके मध्यवर्ती किसी समयमें हुई है और वह मूल 'धर्मामृत' ग्रन्थसे कई वर्ष बादकी कृति है। साथ ही, यह भी पता चलता है कि पं० आशा-

धरजी यद्यपि अपनी इस कृतिको धर्मामृतका १८ वाँ अध्याय करार देकर उसीका चूलिकादिके रूपमें एक अंग बनाना चाहते थे, परन्तु मूलग्रन्थ-प्रतियों और सागार-धर्मामृतकी टीकाके भी अधिक प्रचारमें आजाने आदि कुछ कारणोंके वश वे वैसा नहीं कर सके और इसलिये बादको अनगार-धर्मामृतकी टीकामें उन्होंने उसे 'अध्यात्म-रहस्य' नाम देकर एक स्वतन्त्र शास्त्रके रूपमें उसकी घोषणा की है।

इस ग्रन्थकी पद्यसंख्या ७२ है, जब कि उक्त ग्रन्थ-प्रतिमें वह ७३ दी हुई है। ४४ वें पद्यके बाद निम्न वाक्य नं० ४५ डाल कर लिखा हुआ है, जिसमें भावमन और द्रव्यमनका लक्षण दिया है—

> *"गुण-दोष-विचार-स्मरणादिप्रणिधानमात्मनो भावमनः।*
> *तदभिमुखस्योस्यैवाऽनुग्राहिपुद्गलोच्चयो [द्रव्यमनः]।"*

इस वाक्यको पहले गद्यरूपमें समझ लिया गया था और तदनुसार अनेकान्त (वर्ष १४) में, 'पुराने साहित्यकी खोज' शीर्षकके नीचे (पृष्ठ ९३) प्रकट भी किया गया था; परन्तु बादको मालूम हुआ कि यह तो पद्य है और इसके छन्दका नाम 'आर्यागीति' है, जिसके विषम चरणोंमें १२ और समचरणोंमें २० मात्राएँ होती हैं। इस दृष्टिसे चौथे चरणमें प्रयुक्त 'ऽनुग्राहि' शब्द 'ऽनुग्राही' पद होना चाहिये, जो समझने की भूलमें सहायक हुआ है। पं०

आशाधरजीने अपने अनगारधर्मामृतके प्रथम पद्यकी स्वो० टीकामें इसे पद्यरूपसे ही 'भवति चाऽत्र पद्यम्' इस वाक्य के साथ उद्धृत किया है और इसमें 'ऽनुग्राही' पद का ही प्रयोग किया है। उनके इस उद्धरण से स्पष्ट है कि यह पद्य उनका नहीं है—किसी दूसरे ग्रन्थका पद्य है।

जान पड़ता है यह लक्षणात्मक पद्य ४४ वें पद्यमें प्रयुक्त 'मनः' पद अथवा अगले पद्यमें प्रयुक्त हुए 'द्रव्यमनः' पदके वाच्यको स्पष्ट करनेके लिये किसीने टिप्पणीके तौर पर ग्रन्थके हाशिये पर उद्धृत किया होगा और वह प्रतिलेखककी असावधानीसे मूलग्रन्थका अंग समझा जाकर ग्रन्थमें प्रविष्ट होगया और उस पर गलतीसे पद्य-नम्बर भी पड़ गया है। उसीके फलस्वरूप अगले पद्योंके क्रमाङ्कों-में एक-एक अंककी वृद्धि होकर अन्तका ७२ वाँ पद्य ७३ नवम्बरका बन गया है। अस्तु; यह ग्रन्थ अजमेरके भट्टारकीय शास्त्रभंडारके एक गुटकेमें, जिसके पत्रोंकी स्थिति अति जीर्ण है, ७ पत्रों पर (२५२ से २५९ तक) अंकित है और प्रायः ४०० वर्षका लिखा हुआ जान पड़ता है। पत्रोंकी लम्बाई तथा चौड़ाई समान ६॥ इंच और प्रतिपत्र पंक्तिसंख्या प्रायः २६ है। हाशिये पर संस्कृत-टिप्पणी भी अंकित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ अपने विषयका एक बड़ा ही सुन्दर एवं